Impact Factor (QJIF): 8.47 E-ISSN: 2583-1615, P-ISSN: 3049-3498

International Journal of Research in Academic World

Received: 28/February/2026 **IJRAW:** 2026; 5(4):137-141 **Accepted:** 11/April/2026

किरातार्जुनीयम महाकाव्य के प्रथम सर्ग में राज–व्यवस्थाः एक अध्ययन

*[1]डॉ. अनुसुया उपाध्याय

*[1]व्याख्याता–संस्कृत, बी.एन.पी.जी.गर्ल्स कॉलेज, राजसमन्द, राजस्थान, भारत।

सारांश

संस्कृत साहित्य के इतिहास में महाकवि भारवि का महत्वपूर्ण स्थान है। भारवि का स्थितिकाल 634 ई. से पूर्व माना जाता है। भारवि का सुप्रसिद्ध महाकाव्य 'किरातार्जुनीयम्' है। इसका कथानक महाभारत के 'वन–पर्व' से लिया गया है। इसमें 18 सर्ग है। धूतक्रीडा में पराजित होने के पश्चात पाण्डव द्वेतवन में रहने लगते है। युधिष्ठिर वनेचर को गुप्तचर के रूप में दुर्योधन की राजव्यवस्था एवं उसका प्रजा के प्रति व्यवहार जानने के लिए हस्तिनापुर भेजता है। वनेचर सम्पूर्ण वृतान्त अवगत करके यथावत् युधिष्ठिर के समक्ष प्रस्तुत करता है। द्रौपदी शत्रुओं की सफलता को सुनकर क्रोधित होती है। युधिष्ठिर को युद्ध करने हेतु उत्तेजित करती है। महर्षि वेदव्यास के परामर्श से अर्जुन इन्द्रकील पर्वत पर पाषुपत अस्त्र की प्राप्ति के लिए तपस्या करने जाता है। अर्जुन की परीक्षा लेने के लिए शिव किरात का वेष धारण कर उससे युद्ध करते है और अन्त में उसके साहस से प्रसन्न होकर शिव अर्जुन को पाशुपत अस्त्र प्रदान करते है। इस कथा को भारवि ने अपने काव्य–कौशल से 18 सर्गो में चमत्कार पूर्ण रीति से निबद्ध किया। इस महाकाव्य की गणना 'बृहत्त्रयी' में की जाती है। इसका प्रधान रस वीर है। यह काव्य अपने अर्थ गौरव के लिए प्रसिद्ध है। भारवि अपने समय के राजनीति पण्डित एवं लोक व्यवहार के ज्ञाता थे। यह उनके काव्य में पदे–पदे द्रष्टित होता है।

मुख्य शब्दः राजनीति, प्रजा, वनेचर, आन्तरिक शत्रु, उपायचतुष्टय राजनेता, राजा।

प्रस्तावना

विश्व साहित्य के आदि ग्रन्थ ऋग्वेद में काव्य की उत्पति के बीज समुपलब्ध होते है। ऋग्वेद के 'आख्यान सूक्त' 'नाराशंसी' और गाथा आदि में काव्यत्व की झलक दृष्टिगोचर होती है। इतिहास पुराण काल में ''सुपर्णाध्याय'' आख्यान में भी काव्य–बीज दिखाई दिये। ये आख्यान ही परवर्ती काल में महाकाव्य के रूप में परिवर्तित हो गये।

तत्पश्चात रामायण एवं महाभारत महाकाव्यों के रूप में प्रसिद्ध हुए। इनमें काव्यत्व का पूर्णरूपेण परिपाक दृष्टिगत होता है। संस्कृत महाकाव्यों की विकास परम्परा में संस्कृत व्याकरण के मुनित्रय – पाणिनि, वररूचि और पतंञ्जली का सर्वोच्च स्थान है। इसके बाद महाकवि कालिदास, अश्वघोष एवं भावावि का नाम संस्कृत काव्याकाश में उदित हुआ।

महाकवि भारवि संस्कृत साहित्य के देदीप्यमान रत्नों में से एक है। [1] भावावि पुलकेशी द्वितीय के अनुज विष्णुवर्धन के सभापण्डित एवं त्रावणकोर के निवासी थे। अतः उनका स्थिति काल 6 शताब्दी के उत्तरार्ध या सातवीं शताब्दी के आरम्भ में बैठता है। [2] भारवि की कीर्ति उनके प्रसिद्ध महाकाव्य ''किरातार्जुनीयम्'' पर आधारित है। उनका यहीं एकमात्र ग्रन्थ है। 'किरातार्जुनीयम' का कथानक 'महाभारत' के वनपर्व से लिया गया है। [3] इसमें 18 सर्ग है। [4] धूतक्रीडा में हारकर पाण्डव द्वेतवन में रहने लगे। [5] उनका एक गुप्तचर आकर दुर्योधन के सुव्यवस्थित शासन का वर्णन करता है। इस पर भीम और द्रौपदी युधिष्ठिर को युद्ध करने हेतु उत्तेजित करते है, किन्तु युधिष्ठिर प्रतिज्ञा तोड़कर युद्ध करने के लिए तैयार नहीं होते है। महर्षि वेदव्यास के परामर्श से अर्जुन पाशुपत अस्त्र प्राप्त करने के लिए इन्द्रकील पर्वत पर तपस्या करने जाते है। उनकी कठोर तपस्या को देवाग्ड़नाएं भी भड्ग नहीं कर पाती है। अन्त में अर्जुन किरातवेशधारी शिव से युद्ध करके उन्हें अपने साहस एवं बाहुबल से प्रसन्न करके पाशुपत नामक दिव्य अस्त्र प्राप्त कर लेते

***Corresponding Author:** डॉ. अनुसुया उपाध्याय

है। यही इस काव्य कथा का सार है। वस्तुतः भारवि संस्कृत – काव्यों में रीति–शैली का जन्मदाता है [6] उनका काव्य सौन्दर्य ''नारिकेलसमफल'' माना गया हैं जो बाहर से कठोर लेकिन अन्दर से अत्यन्त मधुर है। भारवि की भाषा में लालित्य, माधुर्य और प्रौढ़ता का सुन्दर समन्वय परिलक्षित होता है। प्रसंग और भावों के अनुकूल शब्दावली का सर्वत्र उपयोग दिखाई देता है। विद्वत समाज कालिदास की उपमा के समान भारवि के अर्थ गौरव पर मुग्ध है। [7] भारवि नीति विषेषतः राजनीति के बड़े गहन ज्ञाता प्रतीत होते है। इनकी अनेक सुक्तियाँ पण्डितों की जिह्वा पर नाचती है। [8] भारवि अपने समय के राजनीति पण्डित थे, मानव स्वभाव के अच्छे पारखी तथा लोक व्यवहार में निष्णात कवि थे। [9]

भारवि द्वारा रचित किरातार्जुनीयम् में राजव्यवस्था से संबंधित बिन्दु निम्नानुसार है–

1. स्वामिभक्त गुप्तचर

युधिष्ठिर वनेचर को दुर्योधन की राजव्यवस्था एवं प्रजा के प्रति व्यवहार को जानने हेतु हस्तिनापुर भेजता है। शत्रु विषयक सम्पूर्ण वृतान्त को जानकर वनेचर द्वैतवन में युधिष्ठिर के समीप जाकर उन्हें प्रणाम कर शत्रु विषयक सम्पूर्ण वृतान्त (यथावत) जैसा उसने देखा निसंकोच वर्णन करता है। उसका मन किंचित भी व्यथित नहीं होता है। वह जानता था कि शत्रु का उत्थान, शासन व्यवस्था में कुशलता एवं उसका प्रजा के प्रति सुव्यवहार को सुनकर राजा युधिष्ठिर दुःखी एवं क्रोधित हो सकते है। लेकिन उसने सोचा कि सच्चा गुप्तचर वही है जो अपने राजा को वस्तुस्थिति का सत्यता के साथ चित्रण प्रस्तुत करे। क्यों कि हित चाहने वाला व्यक्ति कभी भी असत्य मधुर वचन नहीं बोलना चाहता है।

कृतप्रमाणस्य महीं महीभुजे
जितां सपत्नेन निवेदयिष्यतः।
न विव्यथे तस्य मनो न हि प्रियं
प्रवक्तुमिच्छन्ति मृषा हितैषिणः।। [10]

कवि यह बताना चाहते है कि राजव्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने हेतु वनेचर जैसा गुप्तचर होना चाहिए जो निसंकोच होकर अपने स्वामी को वस्तुस्थिति का वर्णन करे एवं असत्य भाषण न करे।

2. अनुकूल राजा तथा अमात्य

किसी भी राज्य की समृद्धि तभी संभव है जब उसका राजा एवं अमात्य एक–दूसरे की बात को पूर्ण सावधानी पूर्वक सुने एवं उनके पश्चात किसी निर्णय पर पहुँचे।

किं सखा साधु न शास्ति योऽधिपं
हितान्न यः संशृणुते स किं प्रभुः।
सदानुकूलेषु हि कुर्वते रतिं
नृपेष्वमात्येषु च सर्वसम्पदः।। [11]

भारवि कहते है जो मंत्री राजा को उचित परामर्श नहीं देता है वह बुरा अमात्य है ओर जो राजा अपने अमात्य की हितकारी बातों को नहीं सुनता है वह कुत्सित राजा है। तात्पर्य है कि मंत्री को भी अपने राजा का सच्चा मार्गदर्शक होना चाहिए। साथ ही राजा को मंत्री की सलाह को सावधानीपूर्वक सुनना चाहिए। क्योंकि राजा व अमात्य परस्पर अनुकूल होंगे तभी वह राज्य उन्नति को प्राप्त करेगा। वर्तमान समय में भी उच्च पद पर आसीन नेता अपने अधीनस्थ व्यक्तियों से उचित परामर्श करे और अधीनस्थ व्यक्ति भी उचित सलाह प्रदान करें तभी देश प्रगति के शिखर पर सुशोभित होगा।

3. जन कल्याणकारी कार्य –

राजा को सदैव प्रजा हित के लिए जनकल्याणकारी कार्यो को करना चाहिए। जिससे उनके यश का विस्तार हो।

तथापि जिह्याः स भवज्जिगीषया
तनोति शुभ्रं गुणसम्पदा यशः।
समुन्नयन् भूतिमनार्यसङ्गमात्
वरं विरोधाऽपि समं महात्मभिः।। [12]

अर्थात् वह दुर्योधन पाण्डवों को जितने की इच्छा से प्रजा हित के लिए अच्छे–अच्छे कार्यो का सम्पादन कर रहा है जिससे प्रजा को अधिकाधिक लाभ की प्राप्ति होवे। प्रजा पाण्डवों को भूल जाए और दुर्योधन के शुभ कार्यो से प्रभावित होकर उसका यशोगान करे।
भारवि यह भी कह रहे है कि यदि कोई व्यक्ति अपना ऐश्वर्य बढ़ाना चाहता है तो दुर्जन व्यक्ति की मित्रता की अपेक्षा महात्माओं के साथ उसका विरोध श्रेष्ठ है। तात्पर्य यह है कि दुर्जन व्यक्ति के साथ मित्रता होने पर उसमें दुर्गुणों की वृद्धि होगी किन्तु सज्जन व्यक्ति के साथ विरोध हो जाने पर उससे जीतने के लिए वह श्रेष्ठ कार्य करेगा जिससे उसका यश बढ़ेगा। जैसा कि दुर्योधन युधिष्ठिर के साथ वैर करके उनके समान श्रेष्ठ राजा बनने हेतु जनकल्याणकारी कार्यो को करता है।

सुखेन लभ्या दधतः कृषीवलै
रकृष्टपच्या इव सस्यसम्पदः।
वितन्वति क्षेममदेवमातृका
श्चिराय तस्मिन् कुरवश्चकासति।। [13]

दुर्योधन प्रजा हित के लिए कार्यो को करने में निरन्तर प्रयत्नशील है। इसके तहत तालाब, कुँए, नहर व बावड़ियों को निर्माण कर रहा है जिससे प्रजा को सिंचाई के पर्याप्त साधन उपलब्ध हो सके। प्रजा कृषि करने हेतु वर्षा पर निर्भर नहीं रहे। सिंचाई की समुचित सुविधा के कारण प्रजा आसानी से फसल प्राप्त कर लेती है।

4. आन्तरिक शत्रुओं पर विजय –

किसी भी राजा को श्रेष्ठ बनने हेतु सर्वप्रथम अपने अन्दर स्थित 6 आन्तरिक शत्रुओं यथा – काम, क्रोध, लोभ, मोह,

मद तथा मात्सर्य पर विजय प्राप्त करनी चाहिए। इन पर विजय प्राप्त कर वह आदर्ष राजा बन सकता है। दुर्योधन सर्वप्रथम इन 6 आन्तरिक शत्रुओं को जीत लेता है। दुर्गम मनु द्वारा प्रतिपादित प्रजा पालन की पद्धति को अपनाना है। आलस्य का परित्याग करके अपने कार्यो को रात और दिन में अलग–अलग विभाजित कर देता है। जिससे उसके किसी भी कार्य में कोई बाधा न आए। उचित समय पर लोगों से सम्पर्क कर उनसे परामर्श कर सके।

कृतारिषड्वर्ग जयेन मानवी
मगम्यरूपां पदवीं प्रतित्सुना।
विभज्य नक्तन्दिवमस्ततन्द्रिणा
वितन्यते तेन नयेन पौरूषम्।। [14]

कवि इसके माध्यम से यह कहना चाहते है कि उच्च पदाधिकारी को अपने आलस्य का परित्याग कर अपने कार्यो का सही विभाजन करना चाहिए। जिससे वह अपने प्रत्येक कार्य को सुव्यवस्थित निष्पन्न कर सके। अपने आन्तरिक शत्रुओं पर सदैव नियन्त्रण रखे।

5. अहंकार का परित्याग –

राजनीति का अहम् गुण है कि नेता सदैव अहंकार से रहित हो। तभी वह जनसामान्य का प्रेम बटोर पाएगा। अपने पद पर चिरकाल तक आसीन रह सकेगा।

सखीनिव प्रीतियुजोऽनुजीविनः
समानमानान् सुहृदश्च बन्धुभिः।
स सन्ततं दर्शयते गतस्मयः
कृताधिपत्यामिव साधु बन्धुताम्।। [15]

भारवि कहते है कि दुर्योधन प्रजा का मन जीतने के उद्देश्य से अंहकार का पूर्णतया परित्याग कर देता है। वह अपने सेवकों के साथ ऐसा व्यवहार करता है जैसे वे उसके प्रिय मित्र हो और मित्रों के साथ बन्धुओं के समान सम्मानपूर्वक व्यवहार प्रदर्षित करता है। बन्धुओं के साथ ऐसा व्यवहार करना है मानो जैसे वे ही शासन चला रहे हो। प्रजा के प्रति इस तरह का व्यवहार करके वह प्रजा को आकर्षित करना एवं अपने पक्ष में करने की चेष्टा कर रहा है।

6. सेवकों के प्रति कृतज्ञता के भाव –

राजनेता को सदैव अपने सेवकों के प्रति कृतज्ञता का भाव रखना चाहिए। जिससे वे अपने सेवकों के 'अन्तस्' को जीत सके।

विधाय रक्षान् परितः परेतरा
नशङ्किताकारमुपैति शङ्कितः।
क्रियापवर्गेष्वनुजीविसात्कृताः
कृतज्ञतामस्य वदन्ति सम्पदः।। [16]

अर्थात् दुर्योधन अपने चारों और विश्वसनीय रक्षकों को नियुक्त करके अपने कार्यो को सम्पन्न करता है। अपने भृत्यों के प्रति मधुर व्यवहार करता है। सेवकों को जो–जो कार्य करने हेतु कहता था। यदि सेवक उन कार्यो को पूर्ण निष्ठा से पूर्ण करते तो दुर्योधन प्रसन्न होकर उन्हें धन राशि पुरस्कार स्वरूप प्रदान करना है। अतः यह धनराशि उसकी सेवकों के प्रति कृतज्ञता को प्रदर्षित करती है।

7. अधीनस्थ राज्यों के प्रति मित्रता –

राजनेताओं को अपने अधीन राज्यों के प्रति मित्रता का व्यवहार करना चाहिए। जिससे वह प्रेमपूर्वक उनकी बात को सहजता से स्वीकार कर लेवे।

न तेन सज्यं क्वचिदुद्यतं धनुः
कृतं न वा कोपविजिह्ममाननम्।
गुणानुरागेण शिरोभिरूह्यते
नराधिपैर्माल्यमिवास्य शासनम्।। [17]

कवि कहते है कि दुर्योधन अपने अधीन राजाओं के प्रति मित्रता का व्यवहार रखता है। जिसके कारण से वे उसकी आज्ञा को स्वतः मान लेते थे। उसे कभी भी उनसे युद्ध नहीं करना पड़ा और न ही उन पर क्रोध करना पड़ा। सभी राजा दुर्योधन के दान, दया दक्षिण्यादि गुणों से अत्यधिक प्रभावित है। अतः उसकी आज्ञा को माला के समान शिरोधार्य करते है।

8. बलशाली के साथ शत्रुता नहीं –

राजनेता को कभी भी अपने से शक्तिशाली देश के साथ शत्रुता का व्यवहार नहीं करना चाहिए। वर्तमान समय में ईरान–अमेरिका का युद्ध इसका उदाहरण है कि शक्तिशाली देश के साथ शत्रुता करने पर हमें कितना नुकसान भोगना पड़ता है। अतः बलशाली के साथ विरोध नहीं रखना चाहिए।

प्रलीनभूपालमपि स्थिरायति
प्रशासदावारिधि मण्डलं भुवः।
स चिन्तयत्येव भियस्त्वदेष्यती
रहो दुरन्ता बलद्विरोधिता।। [18]

अर्थात् दुर्योधन का शासन अति सुदृढ़ है। उसका राज्य शत्रु राजाओं और विरोधियों से रहित है। उसके पड़ोसी राज्य या तो उसके मित्र है अथवा उन्होनें उसकी अधीनता स्वीकार कर ली है। वे सभी उसकी आज्ञा को मानते है। अतः उसके राज्य का भविष्य भी स्थिर है। समुद्रपर्यन्त उसका ही राज्य विस्तृत है। फिर भी दुर्योधन सोचता है कि यदि पाण्डव मुझ पर आक्रमण करेंगे तो वे मेरा राज्य हस्तगत कर लेंगे। वह सदैव चिन्ताग्रस्त रहता है। अतः कहा गया है कि बलवानों के साथ किया गया विरोध दुःखद परिणाम वाला होता है। दुर्योधन ने अपने से अधिक बलवान पाण्डवों के साथ शत्रुता की, अतः वह सदैव उनसे भयभीत एवं चिन्तित रहता है।

9. नीतियों की गोपनीयता –

राजनेता को अपने मन्तव्यों और योजनाओं को गोपनीय रखना चाहिए। जब तक कार्य पूर्ण नहीं हो जाए तब तक उस योजना के बारे में किसी को भी अवगत नहीं होना चाहिए।

महीभृतां सच्चरितैश्चरैः क्रिया
स वेद निःशेषशेषितक्रियः।
महोदयैस्तस्य हितानुबन्धिभिः
प्रतीयते धातुरिवेहितं फलैः।। [19]

कवि कहते है कि दुर्योधन कभी भी अपने कार्य को अधूरा नहीं छोड़ना है। प्रजा के लिए जिन कल्याणकारी योजनाओं और नीतियों को आरम्भ करता है। उसके समीप रहने वाले मंत्री भी उससे अनभिज्ञ रहते है। वह जिन कार्यो को सम्पन्न कर रहा है। उसकी जानकारी कार्य के समाप्त होने पर सभी को अवगत होती है।

10. सफल क्रोध एवं विपत्ति विनाशक –

सफल राजनेता को क्रोधयुक्त एवं विपत्ति को नष्ट करने वाला होना चाहिए। जिससे जनता उसके वश में रहे और उसके आदेश का पालन पूर्ण निष्ठा से करे।

अवन्ध्यकोपस्य विहन्तुरापदां
भवन्ति वश्याः स्वयमेव देहिनः।
अमर्षशून्येन जनस्य जन्तुना
न जातहार्देन न विद्विषादरः।। [20]

भारवि कहते है कि राजा को क्रोध युक्त होना चाहिए तथा क्रोध भी सार्थक होवे। जिसका प्रभाव प्रजा पर पड़े। राजा को अपनी बुद्धि, श्रेष्ठ कार्यो से दुर्दशा पर नियन्त्रण करना और विपत्तियों को नष्ट करने वाला होना चाहिए। वे ही राजा अपनी प्रजा पर प्रभुत्व स्थापित करने में सक्षम होते है। ऐसे राजा के वश में अन्य राजा और प्रजा रहती है। इसके विपरीत जो राजा क्रोध रहित होते है। उनका न सम्मान होता है और न ही उसकी शत्रुता से डरते है। अतः राजा को प्रभावशाली होने के लिए क्रोधयुक्त होना चाहिए।

11. उपाय चतुष्टय प्रयोग –

राजनीति में उपाय चतुष्टय अर्थात् साम–दान–दण्ड–भेद इन उपायों का प्रयोग अच्छी तरह से करना चाहिए। जिससे राज्य समृद्धि की ओर अग्रसर हो।

अनारनं तेन पदेषु लम्भिताः
विभज्य सम्यग्विनियोग सत्क्रिया।
फलन्त्युपायाः परिबृहितायती
रूपेत्य संघर्षमिवार्थसम्पदः।। [21]

कवि कहते है कि दुर्योधन ने साम–दान–दण्ड–भेद आदि उपायों को उचित रीति से विभक्त कर रखा है। वह उचित स्थानों पर उचित उपायों का समुचित उपयोग करता है। जिससे ये एक–दूसरे से स्पर्द्धा करते हुए, दुर्योधन के लिए भविष्य में स्थिर रहने वाली सम्पत्तियों को अधिकाधिक बढ़ा रहे है अर्थात् उसे अत्यधिक धन–सम्पत्तियाँ प्राप्त हो रही है। अर्थात् दुर्योधन सामादि उपायों को समुचित प्रयोग करते हुए योग्य स्थानों पर योग्य व्यक्तियों का चयन करता है। वह व्यक्ति को उसके गुणों के आधार पर पद पर नियुक्त करता है। जिससे वह अपने कार्यो को अच्छी तरह से सम्पन्न कर सके। परिणामस्वरूप ये चारों उपाय उसे अधिकाधिक धन–राशि प्रदान कर रहे है।

उपसंहार

किरातार्जुनीयम के प्रथम सर्ग का विश्लेषण करने पर यह अवगत होता है कि महाकवि भारवि एक श्रेष्ठ कवि ही नहीं बल्कि एक कुशल राजनीतिज्ञ एवं कूटनीतिज्ञ भी थे। महाकाव्य में वर्णित राजनीति के सिद्वान्त वर्तमान समय में भी अत्यधिक महत्वपूर्ण है। किराताजुर्नीयम के प्रथम सर्ग में महाराजा युधिष्ठिर वनेचर को दुर्योधन की राजव्यवस्था एवं प्रजा के प्रति उसके व्यवहार को जानने हेतु वनेचर को नियुक्त करते है। वह वनेचर सम्पूर्ण वृतान्त को जानकर यथावत युधिष्ठिर के समक्ष प्रस्तुत करता है। उसकी सत्यवादिता एवं स्पष्टवादिता यह सिद्ध करती है कि किसी भी राज्य की सुरक्षा और विकास उसके गुप्तचरों की योग्यता और उनसे प्राप्त सटीक सूचना पर निर्भर करती है। दुर्योधन द्वारा अपनाई गई साम–दान–दंड–भेद की नीति यह प्रदर्शित करती है कि शासन व्यवस्था दंड की अपेक्षा जनता के प्रति प्रेम से ज्यादा सुव्यवस्थित एवं स्थाई रहती है। भारवि ने इस महाकाव्य के माध्यम से यह अवगत कराया है कि कूटनीति से हस्तगत की गयी सत्ता भी नीति पूर्ण कार्यो से सुदृढ़ हो सकती है। दुर्योधन स्वजनों और शत्रुओं में कोई भेद किये बिना अपराध के आधार पर दण्ड निर्धारित करता है। जिससे समाज में सुव्यवस्था बनी रहे। राजा का सफल क्रोध वाला होना भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। जिससे शत्रु उनसे भयभीत रहे एवं प्रजा उनकी आज्ञा को शिरोधार्य करे। कुशल राजा को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन पुरूषार्थो का समुचित विभाजन करना चाहिए ताकि ये पुरूषार्थ एक दूसरे के कार्य में बाधा न पहुँचाए। राजा का यह प्रथम कर्त्तव्य है कि वह परिस्थिति के अनुकूल निर्णय लेवें ताकि प्रजा को किसी समस्या का सामना नहीं करना पड़े। राजा व मंत्रि एक दूसरे की बात को सुने। तत्पश्चात् किसी निर्णय पर पहुँचे। दोनों के अनुकूल होने पर ही राज्य समृद्वि को प्राप्त करेगा। भारवि राजा के लिए समय का सुव्यवस्थित विभाजन करने की आवश्यकता पर विशेष जोर देते है ताकि वे अपने कार्यो को समय पर पूरा कर सके। सफल राजा उसके अन्दर स्थित छः शत्रुओं – काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य पर विजय प्राप्त करके ही वह बाहरी शत्रुओं को नष्ट करने में सक्षम हो सकता है। राजा को सदैव जनकल्याणकारी कार्यो को करते रहना चाहिए। जिससे

प्रजा प्रसन्न रहेगी और वह राजा समृद्ध एवं उन्नत राज्य को प्राप्त करेगा। लम्बे समय तक राजा बना रहेगा एवं यश को अर्जित करेगा। भारवि द्वारा प्रदान किया गया राजनीति का व्यवहारिक ज्ञान वर्तमान समय में भी शासन और प्रबन्धन के क्षेत्र में उपयोगी एवं प्रासंगिक है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास – डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, अनिल प्रिन्टर्स इलाहाबाद, पृ. 185
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास, वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, संस्करणः प्रथम वि.संवत 2017, पृ. 853
3. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा, स्व. पं. चन्द्रशेखर पाण्डेय तथा डा. शान्तिकुमार नानूराम व्यास, साहित्य निकेतन कानपुर, प्रथम संस्ककरण 1845, पृ. 55
4. संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, शारदा प्रकाशन काशी, परिवर्धित संस्करण 1948, पृ. 136
5. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा, स्व. पं. चन्द्रशेखर पाण्डेय तथा डा. शान्तिकुमार नानूराम व्यास, साहित्य निकेतन कानपुर, प्रथम संस्ककरण 1845, पृ. 55
6. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास – डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, अनिल प्रिन्टर्स इलाहाबाद, पृ. 186
7. संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, शारदा प्रकाशन काशी, परिवर्धित संस्करण 1948, पृ. 137
8. संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, शारदा प्रकाशन काशी, परिवर्धित संस्करण 1948, पृ. 137
9. संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, डॉ. बाबूराम त्रिपाठी एवं डॉ. वासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी, महालक्ष्मी प्रकाशन, आगरा, संस्करण 1886–87, पृ. 64
10. किरातार्जुनीयम्, अभिराज डॉ. राजेन्द्र मिश्र, अक्षयवट प्रकाशन इलाहाबाद, चतुर्थ संस्करण 1981, पृ. 38
11. किरातार्जुनीयम् (प्रथम सर्ग), डॉ. राकेश शास्त्री, डॉ. प्रतिभा शास्त्री, राजहंस पब्लिशिंग हाउस, उदयपुर, संस्करण 2011, पृ. 40
12. किरातार्जुनीयम्, डॉ. यशवन्त कुमार जोशी, कमल बुक डिस्ट्रीब्युटर्स, उदयपुर, पृ. 89
13. किरातार्जुनीयम् महाकाव्य, श्री रामप्रताप त्रिपाठी, शास्त्री, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, नूतन संस्करण 1971, पृ. 11
14. किरातार्जुनीयम् (प्रथम सर्ग), डॉ. राकेश शास्त्री, डॉ. प्रतिभा शास्त्री, राजहंस पब्लिशिंग हाउस, उदयपुर, संस्करण 2011, पृ. 48
15. किरातार्जुनीयम् महाकाव्य, रामप्रताप त्रिपाठी, प्रकाश निकेतन, इलाहाबाद, नूतन संस्करण 2011, पृ. 7
16. किरातार्जुनीयम्, डॉ. राजेन्द्र मिश्र, सरस्वती प्रकाशन मन्दिर इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1976, पृ. 60
17. From: UOU.ac.in(PDF) P.44
18. International Journal of Sanskrit Research, अनन्ता महाकवि भारवि विरचित ''किरातार्जुनीयम् महाकाव्य के प्रथम सर्ग में राज व्यवस्था का वर्णन, राकेश कुमार, ISSN: 2394-7519, पृ. 11
19. किरातार्जुनीयम्, डॉ. यशवन्त कुमार जोशी, कमल बुक डिस्ट्रीब्युटर्स उदयपुर पृ. 89
20. किरातार्जुनीयम्, डॉ. राजेन्द्र मिश्र, सरस्वती प्रकाशन मन्दिर इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1976, पृ. 98
21. International Journal of Sanskrit Research, अनन्ता महाकवि भारवि विरचित ''किरातार्जुनीयम् महाकाव्य में वर्णित राजनैतिक परिदृश्य, हसन खाँ, ISSN: 2394-7519, पृ. 18।